इकाई 15 वैधता

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.1.1 सार्वजनिक एवं राजनीतिक प्राधिकार की प्रकृति का संदर्भ

15.1.2 प्राधिकार वैध सत्ता है

15.1.3 प्राधिकार और वैधता, दोनों व्याख्यात्मक एवं नियामक

15.1.4 राजनीतिक दायित्व की समस्या

15.2 एक ऐतिहासिक समझ की ओर

15.2.1 राजनीतिक प्राधिकार की दैवी अवधारणा

15.2.2 17वीं सदी : दैवी अवधारणा को चुनौतियाँ

15.2.3 सामाजिक संविदा सिद्धांत

15.2.4 मौंतस्क्यिु के वैधता विषयक वैकल्पिक दृष्टिकोण

15.2.5 रूसो : मौंतस्क्यिु से आगे प्रयास

15.2.6 कार्ल मार्क्स के विचार

15.3 मैक्स वैबर और प्राधिकार-व्यवस्था संबंधी उनकी प्रतीकात्मक व्याख्या

15.3.1 वैबर और उनका वैधता में विश्वास

15.3.2 वैबर के आदर्श निदर्श (Types)

15.3.3 डैविड बीथम द्वारा मैक्स वैबर की आलोचना

15.4 हैबरमास और वैधीकरण संकट

15.4.1 संकट प्रवृत्तियाँ

15.4.2 संकट के दौरान राज्यीय कार्रवाई

15.5 सारांश

15.6 शब्दावली

15.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

15.0 उद्देश्य

प्राधिकार और वैधता संबंधी धारणाएँ राज्य, राजनीति और सभ्य समाज के ज्ञान से अभिन्न हैं। हमें मनस्थ कर लेना चाहिए कि प्राधिकार और वैधता उस रीति को दर्शाते हैं, जिसमें राजनीतिक समुदाय संगठित है। सभी मानव संगठन एक नियम-शृंखला पर आधारित है, प्राधिकार और वैधता यह इंगित करते हैं कि समुदाय के सदस्यों द्वारा ये नियम कैसे और क्यों स्वीकार किए जाते हैं - क्या वे आज्ञापालन योग्य हैं और एक बाध्यकारी लक्षण रखते हैं? आगे के भागों में हम उस रीति का पता लगाएँगे, जिसमें ये अवधारणाएँ राजनीतिक सोच के विभिन्न सूत्रों में समझी जाती हैं और किस प्रकार ये आधुनिक राज्य और समाज को समझने हेतु साधन के रूप में काम आती हैं। भागों के बाद प्रश्न दिए गए हैं, जो आपको अपनी प्रगति जाँचने में मदद करेंगे। अतिरिक्त पाठ्य-सामग्री की एक सूची पाठांत में दी गई है।

15.1 प्रस्तावना

प्राधिकार और वैधता राजनीतिक विश्लेषण में सर्वाधिक मौलिक और स्थायी मुद्दों में से एक रहे हैं। राजनीति-दार्शनिकों, राजनीति-वैज्ञानिकों व समाजशास्त्रियों ने एक लम्बे समय से स्वयं को जन-प्राधिकार और सरकार को समझने हेतु उपयोगी साधन स्वरूप इन अवधारणाओं की छान-बीन में लगा रखे हैं। इन अवधारणाओं को, तथापि, इस रूप में देखा जाना चाहिए कि वे गत कुछ शताब्दियों में ही विकसित हुई हैं, विशिष्ट ऐतिहासिक अटकलबाजियों के बीच गठित और पुनर्गठित हुई हैं। ये, इस प्रकार, उन विभिन्न सूत्रों को प्रकट करने के रूप में भी देखी जा सकती हैं, जिन्होंने अपने क्रम-विकास में ऐतिहासिक रूप से योगदान दिया है।

15.1.1 सार्वजनिक एवं राजनीतिक प्राधिकार की प्रकृति का संदर्भ

इससे पहले कि हम इन विभिन्न सूत्रों की जाँच करें, हमें मन में बैठा लेना चाहिए कि प्राधिकार और वैधता दोनों ही सार्वजनिक और राजनीतिक प्राधिकार की प्रकृति को इंगित करते हैं। सभी मानव समाज, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया, नियमों पर चलते हैं, जो उन्हें सम्बद्धता (cohesion) और एक विशिष्ट पहचान प्रदान करते हैं। इन नियमों को प्रामाणिक और विधिसंगत माना जाता है, यदि वे लोगों द्वारा स्वेच्छापूर्वक बाध्यकारी मान लिए जाते हैं। जबकि नियमों का पालन सरकारों द्वारा भय और अवपीड़न के माध्यम से करवाया जा सकता है, अनुपालन का बलात् निष्कर्षण वैध नहीं माना जा सकता है (देखें 'इण्ट्रोडक्शन', *लैजिटिमेसी/लैजिटिमाइट*, सं. ऐथेनैसिओ मूलाकी, पृ. 4)।

15.1.2 प्राधिकार वैध सत्ता है

चलिए, सबसे पहले सरल शब्दों में यह समझने का प्रयास करते हैं कि इन अवधारणाओं का मतलब क्या है। साधारणतया प्राधिकार को सत्ता का एक रूप समझा जाता है। जबकि सत्ता व्यक्ति के वातावरण को प्रभावित और परिवर्तित करने की क्षमता अथवा योग्यता को इंगित करती है, प्राधिकार परिवर्तन लाने की क्षमता के साथ-साथ परिवर्तन करने के अधिकार का भी संकेत करता है। प्राधिकार को, इसी कारण, सत्ता के एक संशोधित रूप में देखा जा सकता है, जहाँ सत्ता को न्यायसम्मत माना जाता है। इसका अर्थ है कि प्राधिकार किसी भी प्रकार के दमन अथवा छल-कपट पर निर्भर नहीं करता, जबकि इसकी बजाय, आज्ञापालन और अनुपालन के कर्त्तव्य का आह्वान करता है। स्वैच्छिक अथवा सहर्ष आज्ञापालन, जो परिवर्तन लाने के लिए अनिवार्य है, करवाने के लिए, प्राधिकार को सही होने के दावे प्रस्तुत करने पड़ते हैं। वैधता प्राधिकार को सत्यता और औचित्य के गुण प्रदान करती है, जिसके द्वारा आज्ञापालन और अनुपालन का कर्त्तव्य के रूप में, न दमन और बल-प्रयोग के परिणामस्वरूप, आह्वान किया जाता है। इस प्रकार, प्राधिकार जब वैधता से जुड़ा हो तो उसे ''वैध सत्ता'' के रूप में लिया जा सकता है।

15.1.3 प्राधिकार और वैधता: दोनों व्याख्यात्मक एवं नियामक

प्राधिकार और वैधता के अर्थों की इस व्यापक व्याख्या से हमें यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि ये अवधारणाएँ व्याख्यात्मक और नियामक दोनों ही श्रेणियों के रूप में प्रयोग की जा सकती हैं। व्याख्यात्मक श्रेणियों के रूप में, वे राजनीतिक संगठन व शासन के स्वभाव का चित्रण अथवा वर्णन करती हैं। नियामक श्रेणियों के रूप में, वे एक 'शासनाधिकार' हेतु दावों का मूल्यांकन करने के लिए नैतिक मानक प्रदान करती हैं। इसी के साथ ही, हमें याद रखना चाहिए कि इन दो धारणाओं का कोई नियत अर्थ नहीं है। इतिवृत्तात्मक रूप से उनके अर्थ बदलते और विस्तृत होते रहे हैं। किसी भी प्रदत्त ऐतिहासिक अवसर पर, इसके

अतिरिक्त, ये अवधारणाएँ प्रतिस्पर्धात्मक तरीकों से व्याख्यायित और परिभाषित होती रही हैं। इस प्रकार, जबकि उदारवादी जन वैधता को एक सकारात्मक संकेतार्थ रखने वाले के रूप में देखते हैं, मार्क्सवादी जन वैधता को किसी भी वैध नैतिक दावे अथवा 'शासनाधिकार' प्रदान करने के रूप में देखने की ओर प्रवृत्त रहते हैं। उदारवादी व समाजवादी जन प्राधिकार को युक्तिसंगत, सोद्देश्य व मर्यादित के रूप में देखते हैं; एक ऐसा दृष्टिकोण जो विधिसंगत-युक्तिसंगत प्राधिकार एवं सार्वजनिक उत्तरप्रदता हेतु प्राथमिकता में प्रकट हुआ। रूढ़िवादी जन, तुलनात्मक रूप से, प्राधिकार को नैसर्गिक आवश्यकता से उपजा मानते हैं, जो अनुभवों, सामाजिक स्थिति एवं बौद्धिक क्षमता के असमान वितरण के आधार पर 'ऊपर से' प्रयोग किया जाता है। प्राधिकार हेतु औचित्य प्रतिपादन इस दावे के इर्द-गिर्द केन्द्रित है कि व्यवस्था कायम रखने के लिए यह आवश्यक है, और 'प्राकृत अवस्था', एक राजनीतिक शासन-रहित समाज, की क्रूरता व अन्याय से बचने का यही एकमात्र तरीका है (देखें एन्ड्रयू हेवुड, *पॉलिटिक्स*, पृष्ठ 193)।

15.1.4 राजनीतिक दायित्व की समस्या

वैधता, अर्थात् किसी शासन-पद्धति अथवा शासन-व्यवस्था का औचित्य, का प्रश्न अन्ततोगत्वा राजनीतिक बहसों की एक सबसे बुनियादी, राजनीतिक दायित्व की समस्या से जुड़ा है। यह बात निम्नलिखित प्रश्न उठाती है : नागरिक गण सरकार के प्राधिकार को स्वीकार करने हेतु स्वयं को क्यों बाध्य महसूस करते हैं, और क्या राज्य का आदर करना और उसके कानूनों को मानना उनका कर्त्तव्य है? आधुनिक राजनीतिक बहस में, तथापि, वैधता को भी राजनीतिक व्यवहारों एवं विश्वासों की नज़र से देखा जाता है। दूसरे शब्दों में, यह केवल एक गूढ़ अर्थ में लोगों को राज्य का आज्ञापालन क्यों करना चाहिए संबंधी प्रश्न की ही व्याख्या नहीं करती, वरन् इस प्रश्न का भी उत्तर देती है कि उन्हें एक राज्य-विशेष अथवा शासन-व्यवस्था का ही आज्ञापालन क्यों करना चाहिए, दूसरे का क्यों नहीं। दूसरे शब्दों में, यह उन दशाओं अथवा प्रक्रियाओं संबंधी समस्या की छान-बीन करता है, जो लोगों को आज्ञापालन हेतु, अथवा, दूसरे शब्दों में, प्राधिकार को न्यायसंगत मानने हेतु प्रेरित करती हैं। ये मामले हमारा ध्यान अवधारणा के आनुभविक अथवा व्यावहारिक पहलुओं की ओर आकृष्ट करते हैं, यथा, ऐसे वैध एवं संवैधानिक प्रसंग जिनमें सत्ता का प्रयोग किया जाता है (देखें एथेनैसिओ मूलाकी, *लैजिटिमेसि/लैजिटिमाइट,* 1986, पृ. 60 में पाशाली कित्रोमिल्दे, 'इन्लाइटनमन्ट एण्ड लैजिटिमेसि')।

आगामी भागों में हम उस तरीके पर नज़र डालेंगे, जिससे प्राधिकार एवं वैधता विभिन्न दार्शनिक परम्पराओं में गिने जाते हैं, और उन विभिन्न अर्थों पर भी जो उन्हें उनके ऐतिहासिक क्रम-विकास की प्रक्रिया में प्रदान किए गए हैं। हम आगे समाजशास्त्री मैक्स वैबर और राजनीतिक-दार्शनिक जुर्जे हैबरमास द्वारा किए गए दो प्रमुख और परस्पर-विरोधी प्रतिपादनों का भी अध्ययन करेंगे। इन दोनों के बीच अन्तर को समझने के लिए हमें वैधता और प्राधिकार के बीच संबंध को याद करना पड़ेगा; यथा वैधता शक्ति को प्राधिकार में बदल देती है। राजनीति-दार्शनिक वैधता को एक युक्तिसंगत सिद्धांत के रूप में लेते हैं, उन आधारों के द्योतक के रूप में जिन पर सरकारें नागरिकों से आज्ञापालन की अपेक्षा रखती हैं। वैधता हेतु इन दावों का अन्वेषण वास्तविक तथ्य अथवा आज्ञापालन की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है। समाजशास्त्री, हालाँकि, वैधता को उस तरीके पर ध्यान आकृष्ट करते हुए समाजशास्त्रीय रूप में देखते हैं, जिसमें नियमों का अनुपालन प्रकट होता है। चलिए, देखते हैं कि ये विचार किस प्रकार इतिहास में विकसित हुए और वे लक्षण भी जो उन्होंने विशिष्ट ऐतिहासिक अटकलबाज़ियों में धारण किए।

बोध प्रश्न 1

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलायें।

1) प्राधिकार और वैधता के बीच सम्बन्ध स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) राजनीतिक दायित्व क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

15.2 एक ऐतिहासिक समझ की ओर

15.2.1 राजनीतिक प्राधिकार की दैवी अवधारणा

वैधता का विचार आधुनिक युग की शुरुआत होने तक राजनीतिक प्राधिकार के बोध में हाशिए पर ही रहा। सत्रहवीं शताब्दी से पूर्व, व्यापक रूप से यह माना जाता था कि राजनीतिक प्राधिकार दैवी रूप से विहित और प्रकृति-प्रदत्त है, और इसी कारण, तर्कसंगत है। वे लोग जो यह दृष्टिकोण रखते थे, लोगों के एक समूह का दूसरे पर अविवाद्य प्रभुत्व मानते थे। यह प्रभुत्व इस विश्वास से कायम रहता था कि ये नियम ईश्वरेच्छा और प्राधिकार का प्रतिनिधित्व करते हैं, और सिर्फ़ वही जानते हैं कि लोगों के लिए क्या अच्छा है, और इस अच्छाई के अनुसरण हेतु उचित तरीके क्या हैं। सत्रहवीं शताब्दी से, तथापि, वैधता जो अब तक ईश्वरीय अधिकार की धारणा में ही डूबी हुई थी, ने आकार लेना और उन गुणों को विकसित करना शुरू कर दिया जिनको आज हम इससे जोड़ते हैं।

15.2.2 17वीं सदी : दैवी अवधारणा को चुनौतियाँ

सत्रहवीं शती के विचारकों, जैसे कि थॉमस हॉब्स (1588-1679) ने इस दृष्टिकोण का पक्ष लेते हुए शासन हेतु राजाओं के ईश्वरीय अधिकार की धारणा को चुनौती दी कि सभी मनुष्य, स्वभावतः और ईश्वर के समक्ष, स्वतंत्र एवं समान हैं। चूँकि सभी मनुष्य स्वतंत्र थे, कोई भी व्यक्ति, नैसर्गिक रूप से अथवा ईश्वरीय रूप से विहित, सभी मनुष्यों पर शासन करने का

प्राधिकार नहीं रख सकता था। सभी मनुष्यों की प्राकृतिक स्वतंत्रता अथवा समानता की धारणा का प्रयोग इंग्लैण्ड और फ्रांस में निरंकुश राजतंत्रों द्वारा शासन करने के दावों की सत्यता पर संदेह प्रकट करने और उनको उखाड़ फेंकने के लिए किया गया।

15.2.3 सामाजिक संविदा सिद्धांत

सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में विकसित हुए संविदा सिद्धांतों में नैसर्गिक समानता संबंधी अवधारणाएँ इस प्रकार सम्मिलित की गईं कि वे विधिसंगत शासन को एक सैद्धांतिक और तार्किक आधार प्रदान करें। हॉब्स और जॉन लॉक जैसे संविदा सिद्धांतियों ने इस आधार-वाक्य से शुरुआत की कि सभी मनुष्य समान हैं, अपने आप पर अधिकार रखते हैं, और इसी कारण, स्वयं को प्रभावित करने वाले निर्णयों को लेने की क्षमता के साथ-साथ उसका अधिकार भी रखते हैं। ये स्वतंत्र व समान मनुष्य ऐसी उपयुक्त परिस्थितियों को जन्म देने के लिए, जिनमें वे आर्थिक स्वतंत्रता का लाभ उठा सकें, अपनी ओर से स्वयं पर शासन करने के लिए प्राधिकृत करते हुए उन्हें कुछ स्व-निर्धारण अधिकारों को हस्तांतरित करने संबंधी निर्णय लेते हैं। जब यह हस्तांतरण बड़े स्तर पर होता है, यथा, एक बड़ी संख्या में लोग अपना नैसर्गिक अधिकार स्व-शासन को सौंप देते हैं, तो राजनीतिक प्राधिकार जन्म लेता है। यह राजनीतिक प्राधिकार अथवा शासन, जो कुछ अधिकारों व स्वतंत्रताओं के परित्याग के परिणामस्वरूप सामने आता है, वैधताधारक कहा जाता है। शासन करने हेतु सरकार की वैध शक्ति शासितों की सम्मति द्वारा प्रदर्शित होती है, जो समय-समय पर व्यक्त और नवीकृत की जाती रहती है।

हम इस प्रकार देख सकते हैं कि सत्रहवीं शताब्दी से वैधता-संबंधी धारणा विद्यमान निरंकुश शासन-तंत्रों के प्राधिकार की आलोचना अथवा उसको चुनौती के रूप में उदारवादी व गणतांत्रिक परम्पराओं में विकसित हुई। अंग्रेज़ी (1688) और फ्रांसीसी (1789) दोनों ही क्रांतियों में वैधता के विषय को वस्तुतः इस रूप में देखा जा सकता है कि यह उस सरकार के स्वरूप से संबंधित उन प्रश्नों के लिए बुनियादी है, जिनका तर्कसंगत और न्यायसंगत रूप से पालन किया जा सकता है। उदारवाद में प्राधिकार की वैधता को एक व्यक्तिवादी सामाजिक संविदा और शासितों की सम्मति पर प्रासंगिक बनाया गया।

15.2.4 मौंतस्क्यिु के वैधता विषयक वैकल्पिक दृष्टिकोण

संविदावादियों द्वारा समर्थित वैधता-संबंधी व्यक्तिवादी ढाँचे को ठुकराते हुए, मौंतस्क्यिु (1689-1775) ने अपनी पुस्तक *द स्प्रिट ऑफ़ द लॉज़* (1748) में वैधता के वैकल्पिक रूपों को प्रतिसंतुलित (counterpoise) किया। इस वैकल्पिक रूप का अभिप्राय प्राधिकार प्रयोग को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में रखकर व्यक्तिवादी स्वतंत्रेच्छा के मनमानेपन को कम करना था। मौंतस्क्यिु ने अपने ढाँचें में समाज-सुधार, संविधानवाद और मूल नागरिक स्वतंत्रताओं की रक्षा संबंधी तत्त्वों को शामिल कर राज्य हेतु एक सामाजिक रूप से दायित्वपूर्ण भूमिका रखी। इन सबको वैध प्राधिकार में योगदान करने अथवा उसके सारतत्त्व बनने के रूप में देखा गया।

15.2.5 रूसो : मौंतस्क्यिु से आगे प्रयास

ज़ौं - ज़ाक रूसो (1712-1778) ने उदारवादी-व्यक्तिवादी ढाँचे में परिकल्पित वैधता को गणतंत्रीय चुनौती का चित्रण किया। *सैकण्ड डिस्कोर्स* में मिथ्या संविदा संबंधी अपने सिद्धांत में रूसो ने वहीं से काम शुरू किया जहाँ मौंतस्क्यिु ने छोड़ा था। समाज और राजनीति के एक उदारवादी-व्यक्तिवादी सिद्धांत की सीमाओं की ओर इशारा करते हुए, रूसो ने मौंतस्क्यिु की ही भाँति अपने निरूपण में सामाजिक विषयों के अधिक व्यापक क्षेत्र

को समेटने का प्रयास किया और इस प्रकार उसे शामिल किया। मौंतस्क्यिु के निरूपण से आगे निकलते हुए हालाँकि रूसो ने इस सामाजिक दायरे में समाज के उन वर्गों की आशाओं को शामिल करने का प्रयास किया था जिनको उदारवादी ढाँचे में कोई अभिव्यक्ति नहीं मिली थी। रूसो ने महसूस किया कि सामाजिक संविदा एक धोखा है, जिसके माध्यम से धनी लोग ग़रीबों को अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए मज़बूर करते हैं। इसीलिए, रूसो के अनुसार, वैधता सिर्फ़ राजनीतिक प्राधिकार के लोकतंत्रीकरण से प्राप्त नहीं की जा सकती। लोकतंत्रीकरण लोगों की सक्रिय भागीदारी, और उनकी सामाजिक व राजनीतिक आवश्यकताओं की पहचान के माध्यम से किया जाना था। रूसो की योजना में सरकार की वैधता और सत्ता-प्रयोग नागरिकों की सक्रिय भागीदारी पर टिके थे। वैधता हेतु इस वैकल्पिक विचार का महत्त्व संबंधित व्यक्ति, सार्वजनिक उत्तरदायित्व और सामूहिक लक्ष्यों में निहित है, जो सभी एक गणतंत्रात्मक राज्य की उत्तरजीविता हेतु आवश्यकता के रूप में देखे गए (पाशाली कित्रोमिल्दे, 1986, पृ. 62-64)।

15.2.6 कार्ल मार्क्स के विचार

कार्ल मार्क्स (1818-1883), तथापि, सक्रिय भागीदारीपूर्ण नागरिकता और राजनीतिक प्राधिकार के बीच संबंध के विषय में रूसो के आशावाद से सहमत नहीं हैं। उनके के अनुसार, आधुनिक राज्य मध्यवर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व करता था और इसीलिए, जनता की आम इच्छा का प्रतिनिधि नहीं था। जनता ज़्यादा से ज़्यादा नागरिकों के रूप में स्वयं की सिर्फ़ 'कल्पना' ही कर सकती थी, क्योंकि 'राजनीति' में उनकी भागीदारी एक वर्ग-विभेदित समाज में उनकी अधीनस्थ स्थिति पर निर्भर थी और उसी से बाधित भी थी। मार्क्स ने महसूस किया कि आम इच्छा के ढाँचे में व्यक्ति वास्तविक मुद्दों से घबराया हुआ था, यथा समाज की बुराइयाँ और पूँजीवाद के असमतावादी प्राधार, जिन्होंने उन्हें जन्म दिया था। इस प्रकार, एक पूँजीवाद राज्य कभी भी विधिसंगत और 'लोकेच्छा स्थल' नहीं बन सका; क्योंकि वह जन्मजात शोषक होता था। मार्क्स की रूपरेखा में, इसीलिए, एक पूँजीवादी समाज में राजनीतिक प्राधिकार की वैधता एक मिथक थी। यह अवधारणा, जैसा कि हमने देखा, इस आधार-वाक्य पर टिकी थी कि पूँजीवादी राज्य जन्मजात शोषणकारी थे और इसीलिए आम इच्छा को कभी व्यक्त नहीं कर सकते थे। वैधता मार्क्स के लिए यहाँ तक अप्रासंगिक थी कि वह एक ऐसी भावी मानवीय दशा की प्रत्याशा करते थे, जिसमें लोग स्वयं अपनी नियति पर काबू कर सकें और स्वयं को बनाए रखने के लिए 'घबड़ाहटों' पर निर्भर न हों, (देखें विलियम कॉनॉली, *लैजिटिमेसी एण्ड द स्टेट*, पृ. 7-8)।

मार्क्स के अनुसार, इस प्रकार उक्त रद्द विषय वैधता नहीं था। उन्होंने एक आर्थिक व्यवस्था के रूप में पूँजीवादी समाजों पर ध्यान आकृष्ट किया, जो उत्पादन-साधनों के स्वामियों एवं वेतनभोगी कामगार वर्ग के बीच विरोधाभासी आर्थिक हितों पर आधारित था। मार्क्सवादी विश्लेषण में, समस्या उन दशाओं का विश्लेषण करने संबंधी थी जिनमें रहकर कामगार वर्ग पूँजीवादी व्यवस्था को बदल डालने के लिए स्वयं को एक सामूहिक बल में गठित करे। मैक्स वैबर (1864-1920) के निरूपण को एक प्रतिसंदर्श परिप्रेक्ष्य (counter-perspective) के रूप में देखा जा सकता है। अंतिम छोर से शुरू करने पर, वैबर ने स्वयं को प्राधिकार की प्रकृति और आज्ञापालन सुनिश्चित करने संबंधी समस्याओं के विश्लेषण से जोड़ा। पूँजीवादी राज्य के अनुसार, प्राधिकार और आज्ञापालन सुनिश्चित करने के साधनों से यह संबंध ही है जो आधुनिक विश्व में प्राधिकार व्यवस्थाओं पर वैबर के सैद्धांतिक निरूपण में प्रकट होता है (देखें जेम्स पैत्रा, *क्लास पॉलिटिक्स, स्टेट पॉवर एण्ड लैजिटिमेसी*, पृ. 1955)।

बोध प्रश्न 1

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलायें।

1) किन परिस्थितियोंवश वैधता की संकल्पना राजनीतिक प्राधिकार को समझने हेतु महत्त्वपूर्ण हो गई?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) मौंतस्क्यिु और रूसो ने वैधता की उदारवादी-व्यक्तिवादी व्याख्या को थोड़ा बदल दिया। कैसे?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) वैधता विषयक उदारवादी-व्यक्तिवादी विचार मार्क्सवादी विचार से किस प्रकार भिन्न है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

15.3 मैक्स वैबर और प्राधिकार-व्यवस्था संबंधी उनकी प्रतीकात्मक व्याख्या

प्राधिकार और वैधता संबंधी हमारी चर्चा में अब तक अवधारणाओं के ऐतिहासिक क्रम-विकास को समझने पर ध्यान केन्द्रित किया गया। हमने खासतौर पर इन विषयों पर गहरी रुचि दर्शायी - प्राधिकार का अन्वेषण, वे आधार जिन पर वैधता का दावा किया जाता है, और इस प्रकार के स्वीकृति के मुकाबले परीक्षित दावे की प्रासंगिकता; इनके अलावा, हॉब्स, मौंतस्क्यिु, रूसो और मार्क्स जैसे राजनीति-दार्शनिक। मैक्स वैबर जैसे समाजशास्त्रियों ने, हालाँकि स्वयं को सत्ता के लिए किए गए दावों से नहीं जोड़ा। उन्होंने स्वयं को इन व्यावहारिक प्रश्नों से जोड़ा - वह तरीका जिसमें वैधता प्रकट होती हो, सत्ता के पदों पर आसीन होने के लिए उसकी प्रभावशीलता, वे परिस्थितियाँ जिनमें वैधता का अनुभव अथवा कटाव किया जाता है, और उसके असफल रहने पर क्या होता है। एक राजनीति-समाजशास्त्र संबंधी विषय के रूप में वैधता, इस प्रकार, कई मामलों को देखती है, जैसे - वे सामाजिक अभिकरण कौन से हैं जिनके माध्यम से वैधता प्रभावी बन जाती है? यथा, एक राजनीतिक प्राधिकरण की वैधता लोग कैसे स्वीकार करते हैं? इस स्वीकृति को वे कैसे व्यक्त करते हैं, और वे माध्यम अथवा संसाधन जिनके मार्फ़त राजनीतिक शासन-प्रणालियाँ वैधता जुटाती हैं (डैविड बीथम, *ब्लैकवैल कॅम्पैनिअन टु पॅलिटिकॅल सोशिओलॅजि,* पृ. 107-108 में 'पॅलिटिकॅल लैजिटिमेसी')।

15.3.1 वैबर और उनका वैधता में विश्वास

वैधतासंबंधी वैबर का अध्ययन राजनीतिक शासन की जटिलताओं को समझने के लिए उपयोगी समझा जाता है। वैबर ने वैधता को सत्ता-संबंधों के एक योजनाबद्ध अध्ययन हेतु बुनियादी माना। वैबर ने कहा, 'रीति-रिवाज़, व्यक्तिगत लाभ, भाईचारे के विशुद्ध प्रभावोत्पादक अथवा अभीष्ट प्रयोजन', उसके कायम रहने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है। प्रभुत्व स्थापन की किसी प्रदत्त व्यवस्था को कायम रखने के लिए आमतौर पर एक और तत्त्व होता है, यथा 'वैधता में विश्वास'। दूसरे शब्दों में, जहाँ प्राधिकार की वैधता को एक आम मान्यता मिली होती है, उसके आदेश मानना बाध्यता होती है। परिणामस्वरूप, अवपीड़न का कोई व्यापक प्रयोग नहीं होगा, अथवा उच्छेदन अथवा अवज्ञा का कोई निरन्तर भय नहीं होगा [मैक्स वैबर, *इकॉन्मी एवं सोसाइटि,* 1978 (1922), पृ. 213]। प्रभुत्व स्थापन संबंधी व्यवस्थाओं के वैबर के अध्ययन ने उन्हें इस निष्कर्ष की ओर प्रवृत्त किया कि वैधता संबंधी अनेक धारणाएँ अथवा सिद्धांत हैं। अभीष्ट वैधता के विशिष्ट प्रकार अथवा सिद्धांत पर आधारित, इस निष्कर्षित आज्ञापालन में मतभेद थे जिनकी गारण्टी देने के लिए एक प्रकार का प्रशासनिक तंत्र विकसित हुआ, और एक प्रकार का प्राधिकार भी, जिसने इसका प्रयोग किया।

15.3.2 वैबर के आदर्श निदर्श (Types)

वैबर ने प्रत्येक द्वारा अभीष्ट वैधता हेतु दावों के प्रकार पर आधारित, प्रभुत्व-स्थापन के विभिन्न नमूनों अथवा 'व्यवस्थाओं' की पहचान की (देखें डैविड बीथम, *पॅलिटिकॅल लैजिटिमेसी,* पृ. 109)। तदनुसार, वैबर ने तीन 'आदर्श नमूनों' अथवा 'संकल्पनात्मक मॉडलों' का निर्माण किया, जिनसे उसे उम्मीद थी कि राजनीतिक शासन की उच्च रूप से जटिल प्रकृति को अर्थ प्रदान करने में मदद करेंगे, यथा परम्परागत प्राधिकार, करिश्माई, और विधिसंगत-युक्तिसंगत प्राधिकार को अर्थ प्रदान करने में। इन मॉडलों में से प्रत्येक राजनीतिक वैधता के एक विशिष्ट स्रोत का प्रतिनिधित्व करता था और इनसे सम्बन्धित ऐसे विभिन्न कारणों का भी, जैसे - लोग एक शासन-पद्धति विशेष का अनुपालन क्यों करते थे?

प्रथम मॉडल, यथा परम्परागत प्राधिकार, में लम्बे समय से चले आ रहे रीति-रिवाज़ और परम्पराएँ राजनीतिक वैधता के स्रोत होते थे। इस वैधता की पवित्रता इस तथ्य से व्युत्पन्न थी कि प्राधिकार की ये पद्धतियाँ पहले की पीढ़ियों द्वारा स्वीकृत और आज्ञापालित रही थीं। प्राधिकार-संबंधी परम्परागत पद्धतियों के उदाहरण हैं - पितृसत्ता (परिवार पर पिता का शासन) अथवा वृद्ध-पुरुष शासन ('बड़ों' का शासन)। परम्परागत प्राधिकार की ऐसी व्यवस्थाओं को उन समाजों में आज भी देखा जा सकता है, जहाँ सत्ता और विशेषाधिकार की पैतृक और वंशगत पद्धतियाँ अस्तित्व में हैं; यथा साउदी अरब, मोरक्को और कुवैत में, और उसके संवैधानिक रूपों में, जैसे कि इंग्लैण्ड, नीदरलैण्ड्स और स्पेन में।

दूसरा रूप, यथा, करिश्माई प्राधिकार ने वैधता किसी व्यक्ति-विशेष के चमत्कारिक अथवा आकर्षक व्यक्तित्व से व्युत्पन्न की। इस आकर्षण का आधार व्यक्ति-विशेष की जाति, वर्ग अथवा अन्य आरोप्य गुणों में निहित नहीं था। यह अनन्य रूप से उस व्यक्ति के निजी आकर्षण पर निर्भर होता था, जो लोगों को आज्ञापालन हेतु लुभाते हुए, उसे एक नेता/नेत्री के रूप में स्वीकार कर देता है। करिश्माई प्राधिकार के उदाहरण हैं – मुसोलिनी, हिटलर, और नैपोलियन, जिनका नेतृत्व और प्रसिद्धी, जॉन एफ. कैनेडी जैसे अन्य प्रसिद्ध नेताओं से भिन्न, उनके राजनीतिक पद से व्युत्पन्न प्राधिकार पर कम, और उनके व्यक्तिगत आकर्षण पर अधिक आधारित थे।

वैबर की तीसरे प्रकार की वैधता, विधिसंगत-युक्तिसंगत, प्राधिकार को यथार्थ और विधिवत् परिभाषित नियम-समूह से जोड़ती है। प्राधिकार का विधिसंगत-युक्तिसंगत रूप, वैबर के अनुसार, अधिकांश आधुनिक राज्यों में पाए जाने वाले प्राधिकार का ही प्रतीक रूप है। इस प्रकार की प्राधिकार व्यवस्थाओं में, करिश्माई और पारम्परिक रूपों से भिन्न, राजनीतिक सत्ता औपचारिक, विधिसम्मत, संवैधानिक नियमों से व्युत्पन्न होती है, उसी पर निर्भर करती है, और परिसीमित होती है। ये नियम ही हैं जो सत्ता पदासीन की प्रकृति और कार्यक्षेत्र को निर्धारित करते हैं (एण्ड्रयू हेवुड, *पॉलिटिक्स,* पृ. 195)।

15.3.3 डैविड बीथम द्वारा मैक्स वैबर की आलोचना

आधुनिक युग में राजनीतिक व्यवस्थाओं एवं शासन-पद्धतियों की वैधता को समझने में प्राधिकार पद्धतियों संबंधी वैबर के वर्गीकरण को एक महत्त्वपूर्ण योगदान माना जाता है, खासकर उस तरीके से जिसमें प्राधिकार के आधुनिक रूप परम्परागत रूपों से भिन्न हैं। डैविड बीथम जैसे राजनीति-वैज्ञानिक, हालाँकि बताते हैं कि वैबर की तीनों तर्कसंगत सिद्ध होती धारणाएँ, जबकि वे हमें यह समझने में मदद करती हैं कि प्राधिकार की पूर्वाधुनिक के मुकाबले आधुनिक पद्धतियों के बारे में क्या ख़ास है, उन विभिन्न शासन-पद्धतियों के चरित्र-चित्रण हेतु अपर्याप्त हैं जो बीसवीं शती के दौरान अस्तित्व में थीं (देखें डैविड बीथम, *पॉलिटिकॅल लैजिटिमेसी,* पृ. 110)।

वैबर, जो शासन-पद्धतियों को तीन प्रतीकात्मक व्याख्याओं में परखते और रखते हैं, अथवा विकल्पतः, शासन-पद्धतियों को दो नमूनों के मिश्रण के रूप में देखते हैं, से भिन्न बीथम आज्ञापालन की प्रक्रियाओं एवं आधारों की समझ हेतु एक विस्तृत प्राधार को ज्यादा पसंद करते हैं। उनके प्राधार में राजनीतिक प्राधिकार को समझने के लिए तीन स्तर अथवा मानक दिए गए हैं। बीथम कहते हैं, राजनीतिक प्राधिकार इस सीमा तक वैध हैं कि : (1) यह स्थापित नियमों के अनुसार अभीष्ट और व्यवहृत होता है (वैधता); (2) ये नियम सामाजिक रूप से स्वीकृत धारणाओं के अनुसार दो विषयों में सही ठहराए जाते हैं - (i) प्राधिकार का वैध स्रोत, और (ii) सरकार के उचित साधन व मानक; और (3) प्राधिकार की स्थिति स्पष्ट सहमति अथवा समुचित अधीनस्थों की अभिपुष्टि द्वारा, और दूसरे विधिसंगत प्राधिकारों से मान्यता द्वारा समर्थित होती है (वैधीकरण)।

ये तीन स्तर वैकल्पिक रूप अथवा मॉडल नहीं हैं, परन्तु तीनों मिलकर प्राधिकार के आज्ञापालन अथवा सहयोग हेतु लोगों को नैतिक आधार प्रदान करते हैं। इस प्रकार के प्राधार, बीथम को लगता है, इन कारणों का भी ज्ञान कराते हैं कि सत्ता में वैधता का अभाव क्यों हो सकता है। यदि कहीं नियमों का उल्लंघन होता हो, तो 'अवैधता' शब्द का प्रयोग होता है; यदि नियम सामाजिक विश्वासों द्वारा दोषपूर्वक समर्थित हैं, अथवा गहरे विवादित हैं तो हम कहते हैं कि यहाँ 'वैधता अभाव' है और यदि सहमति अथवा मान्यता को सार्वजनिक रूप से वापस ले लिया जाता है अथवा स्थगित कर दिया जाता है, हम 'वैधता-त्याग' की बात करते हैं।

बीथम को लगता है कि इस प्रकार का प्राधार वैबर के विश्लेषण की एक और अपर्याप्तता को पूरा करता है। यह हमें लोग विरोध क्यों करते हैं यह समझने में, अथवा उन परिस्थितियों को समझने में मदद करता है जिनमें जन विरोध और उपद्रव द्वारा राजनीतिक प्राधिकार को चुनौतियों के माध्यम से राजनीतिक परिवर्तन होता है। वैधता को एक 'वैधता में विश्वास' से अधिक कुछ नहीं समझना, जैसा कि वैबर ने किया, केवल सत्तासीन व्यक्तियों के दृष्टिकोण से वैधता निर्धारण पर ध्यान आकृष्ट करता है। बीथम का प्राधार, दूसरी ओर, उन प्रक्रियाओं को उजागर करता है जिनके माध्यम से शासित वर्ग मान्यता और आज्ञापालन प्रदान करता अथवा देने से इंकार करता है।

यह बात आधुनिक राजनीतिक व्यवस्थाओं में वैधता प्रक्रियाओं को समझने में एक और महत्त्वपूर्ण योगदान करता है; यह जुर्जे हैबरमास संबंधी है जो कि हम अगले पाठांश में पढ़ेंगे।

बोध प्रश्न 3

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलायें।

1) मैक्स वैबर प्राधिकार पद्धतियों को किस प्रकार समझते हैं? वैबर के निरूपण में डैविड बीथम क्या अर्थ परिवर्तन करते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

15.4 हैबरमास और वैधीकरण संकट

जुर्जे हैबरमास ने वैधता के वैबेरियन अभिगम हेतु एक विकल्प का विस्तृत अध्ययन किया है। यह काम करने के लिए, हालाँकि, हैबरमास ने ऐसा कोई रूढ़िवादी मार्क्सवादी विचार नहीं अपनाया जो वैधता को एक मध्यवर्गी मिथक से अधिक कुछ नहीं समझता हो, एक ऐसी बात जो उन असमानता और शोषण की परिस्थितियों में नहीं हो सकती जो आधुनिक

पूँजीवादी समाजों में विद्यमान थे। हैबरमास ने माना कि आधुनिक पूँजीवादी समाज अथवा उदारवादी लोकतंत्रों के पास जनसाधारण की सहमति और समर्थन प्राप्त करने की एक व्यवस्था अवश्य होती है। उन्होंने, इसीलिए, न सिर्फ़ असमानताओं पर ध्यान आकृष्ट किया, जो पूँजीवादी समाजों में विद्यमान थीं, वरन् उस प्रशासन-तंत्र पर भी ध्यान केन्द्रित किया जिसके माध्यम से वैधता को कायम रखा जाता था, यथा लोकतांत्रिक प्रणाली, दलीय प्रणाली, सामाजिक व कल्याणकारी सुधार, आदि। साथ ही, बहरहाल, हैबरमास ने वैधता की उन मुश्किलों को भी बताया, जो एक ऐसी राजनीतिक प्रक्रिया में निश्चित रूप से सामने आएँगी जिसने असमान वर्ग सत्ता को जन्म दिया और कायम रखा।

15.4.1 संकट प्रवृत्तियाँ

अपनी पुस्तक *लैजिटिमेशन क्राइसिस* (1973) में, हैबरमास ने पूँजीवादी समाजों में 'संकट प्रवृत्तियों' के रूप में इन मुश्किलों की पहचान की है। ये संकट प्रवृत्तियाँ पूँजीवादी संचयन संबंधी तर्क और लोकतांत्रिक राजनीति द्वारा कम किए गए आम दबाव के बीच एक बुनियादी विवाद के परिणामस्वरूप उभरीं।

लाभ अनुधावन (pursuit of profit) और वर्ग असमानताओं को जन्म देने पर आधारित पूँजीवादी समाजों को शासन हेतु एक आम दावे का वास्ता देकर राजनीतिक स्थिरता बनाए रखनी पड़ती है। इस प्रकार की व्यवस्था में, वैधता उन लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं द्वारा सुनिश्चित की जाती है जो समाज-कल्याण प्रावधानों, बढ़ी जन सहभागिता और सामाजिक समानता हेतु अतिरिक्त माँगों की ओर प्रवृत्त करती हैं। यह बदले में राज्य पर दबाव डालती हैं, ताकि वह अपने सामाजिक दायित्व विस्तृत कर सके, और कल्याणकारी (अलाभकारी) उपायों पर खर्च बढ़ाये जाने पर दबाव डालते हुए, असमानताओं को दूर करने के लिए राज्य-हस्तक्षेप की माँग भी करती है। ये दबाव कराधान एवं सार्वजनिक व्यय में वृद्धि और लाभ स्तरों पर लगाम लगाकर और उद्यम को निरुत्साहित करके पूँजीवादी संचयन को रोकने की ओर प्रवृत्त करते हैं। आम दबावों को रोकने अथवा आर्थिक पतन का जोखिम लेने पर बाध्य, ऐसे समाज वैधता को कायम रखना उत्तरोत्तर कठिन और प्रायः असंभव पाते हैं।

इस प्रकार, एक पूँजीवादी समाज निरन्तर संकट-प्रवृत्तियों के चंगुल में रहता है, जो उस वैधता के माध्यम से स्वयं को कायम रखने की उसकी योग्यता को परखती हैं, जो वह विभिन्न लोकतांत्रिक संस्थाओं के माध्यम से प्रकाश में ला सकती है। ऐसे वैधीकरण उपायों में निवेश करते समय पूँजीवादी व्यवस्था को यह देखने के लिए एक निरंतर विपत्तिसंकेत पर निर्भर रहना पड़ता है कि ये प्रक्रियाएँ उस सीमा तक लम्बित न हों कि वे उस पूँजीवादी व्यवस्था के व्याख्यात्मक सिद्धांतों की धज्जियाँ ही उड़ा दें, जो एक लाभ-निष्कर्षण अथवा पूँजी-संचयन से जुड़ी वर्ग शोषणकारी व्यवस्था है।

हैबरमास के अनुसार, पूँजीवादी लोकतंत्र सामाजिक समानता व कल्याणकारी अधिकारों हेतु आम माँगों और निजी लाभ पर आधारित एक बाज़ार अर्थव्यवस्था की अपेक्षाओं, दोनों को स्थायी रूप से संतुष्ट नहीं कर सकता। इस प्रकार के 'संकटों' के निहितार्थ में समाज और पूँजीवादी व्यवस्था के नियामक प्राधारों के एकीकरण अथवा सम्बद्धता में अव्यवस्था शामिल है।

15.4.2 संकट के दौरान राज्यीय कार्रवाई

संकटों के इस प्रकार परिदृश्यों में, आधुनिक राज्य, हैबरमास के अनुसार, विद्यमान प्राधारों को विधिकृत एवं स्थिरीकृत करने के लिए 'तंत्र परिचालन' और सैद्धान्तिक उपायों का एक

साथ सहारा लेता है। इसमें आर्थिक (वेतन श्रमिक एवं पूँजी संबंधों) तथा राजनीतिक क्षेत्रों (शासी संस्थाओं) की 'विमुक्ति' अथवा वियोजन शामिल होता है। राजनीतिक क्षेत्र परिणामतः कम सहभागितापूर्ण और ज़्यादा अवैयक्तिक, कर्मचारी-तंत्रीकृत, और नियमों से दूर हो जाता है। इस प्रकार की व्यवस्था को, तथापि, उन अधिकारों, न्याय एवं नागरिकता संबंधी 'सर्वमुक्तिवादी' संलापों को विधिकृत करके सैद्धांतिक रूप से एक साथ रखा जाता है जो इन नियमों को शासनार्थ नैतिक अधिकार देते हैं।

बोध प्रश्न 4

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलायें।

1) ज़र्जे हैबरमास उदारवादी-पूँजीवादी समाजों में समाजों में वैधता-संकट को किस प्रकार समझने का प्रयास करते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

15.5 सारांश

प्राधिकार इस बात में सत्ता के एक अर्थ-सीमित रूप की ओर इशारा करता है कि यह न सिर्फ़ परिवर्तन क्षमता की एक अभिव्यक्ति भर है, बल्कि परिवर्तन हेतु अधिकार भी है। वह तत्त्व जो प्राधिकार को यह विशिष्ट लक्षण प्रदान करता है, वैधता कहलाता है। यह वैधता ही है जो प्राधिकार के प्रति आज्ञापालन को प्रसन्नतापूर्वक प्रदत्त और बंधनकारी बनाती है। आधुनिकता के आगमन तक वैधता-रहित प्राधिकार की धारणा राजनीतिक प्राधिकार की समझ के प्रति उपांतिक ही रही। ज्ञानोदय के विचार द्वारा उत्पन्न आधुनिकता और बौद्धिक उत्तेजना के साथ ही, इस धारणा पर कि प्राधिकार ईश्वरीय रूप से विहित विषयवस्तु है, संदेह किया जाने लगा।

सत्रहवीं शताब्दी में, थॉमस हॉब्स जैसे दार्शनिकों ने शासन करने के दावे के रूप में ईश्वरीय अधिकार की धारणा को चुनौती दी। उसने इस दृष्टिकोण को दृढ़तापूर्वक रखा कि सभी मनुष्य स्वतंत्र व समान हैं और स्वयं-निर्धारण के लिहाज से शक्ति व क्षमताप्राप्त हैं। हॉब्स और लॉक्स द्वारा विकसित सामाजिक संविदा की धारणा ने यह संकेत किया कि वैध प्राधिकार अंततोगत्वा व्यक्तियों द्वारा एक स्वैच्छिक परित्याग पर निर्भर है, जो अपने आपों पर शासन करने के अधिकार संबंधी है, ताकि हम ऐसी परिस्थितियाँ बना सकें जो अधिक व्यापक आर्थिक स्वतंत्रताओं हेतु सहायक हों।

मौंतस्क्यिु जैसे दार्शनिकों ने संविदावादियों द्वारा प्रतिपादित वैधता की उदारवादी-व्यक्तिवादी धारणा को उल्टा बयान किया, यथा समाज-सुधार एवं संविधानवाद के तत्त्वों को शामिल कर एक सामाजिक संदर्भ में प्राधिकार के विधिकरण को स्थापित किया। रूसो ने वैध प्राधिकार की व्यक्तिवादी धारणा पर एक गणतंत्रीय प्रहार को दर्शाते हुए, सुझाया कि

सामाजिक संविदा वस्तुतः एक मिथ्या अनुबंध है और राजनीतिक अस्थिरता हेतु एक भ्रामक उदारवादी हल बतलाती है। उन्होंने सक्रिय नागरिकता बोध और जन-भागीदारी के माध्यम से सामूहिक लक्ष्यों के कार्यान्वयन पर आधारित राज्य-व्यवस्था के लोकतंत्रीकरण की वकालत की।

कार्ल मार्क्स, हालाँकि, राजनीतिक वैधता के प्रश्न हेतु इस प्रकार के किसी हल के प्रति संदेहकारी थे। उनके अनुसार वैधता की धारणा में स्वयं ही एक मध्यवर्गी मिथक शामिल था, जो एक शोषण और प्रभुत्व स्थापन के सिद्धांतों पर आधारित पूँजीवादी समाज में निष्पाद्य नहीं था। मैक्स वैबर, एक समाजशास्त्री, ने प्राधिकार और पूँजीवादी समाजों में आज्ञापालन सुनिश्चित करने संबंधी समस्याओं पर दृष्टिपात किया। ऐसे आधार और सामाजिक अभिकरणों की खोज करते हुए जिन्होंने वैधता को अपने आप प्रभावी बना दिया, वैबर ने विधिकरण की कार्यप्रणाली को समझने के लिए प्राधिकार प्रणालियों का एक तीन-सतही उदाहरणीकरण प्रस्तुत किया।

जुर्जे हैबरमास ने आधुनिक समाज के वर्ग-शोषणकारी आधार पर ज़ोर देते हुए बताया कि उदारवादी लोकतंत्रों में लोकतांत्रिक कार्यप्रणालियों के माध्यम से जनता का समर्थन हासिल करने के साधन उपलब्ध हैं। ये, तथापि, विधिकरण पर लक्ष्य करते समय, सामाजिक क्षेत्रों में बढ़े राज्य हस्तक्षेप हेतु आम दबावों को भी भड़काते हैं। लोकतंत्रीकरण हेतु दबावों (विधिकरण) और पूँजीवादी संचयन के बीच विवादास्पद खींचतान विधिकरण संकट द्वारा निस्तारित उदारवादी (पूँजीवादी) लोकतंत्रों को जन्म देती है। उदारवादी लोकतंत्र 'परिचालन उपायों' की शरण लेकर इन संकट-प्रवृत्तियों से बचने का प्रयास करते हैं, यथा अर्थव्यवस्था से राजनीतिक क्षेत्र को अलग करना, राजनीतिक क्षेत्र को कम सहभागितापूर्ण और अधिक निर्वैयक्तिक और नौकरशाह बनाना, और अधिकारों, नागरिकता व न्याय संबंधी 'सर्वमुक्तिवादी' संलापों के माध्यम से व्यवस्था को वैचारिक रूप से निर्बाध रखना।

15.6 शब्दावली

गणतंत्रीय : गणतंत्र शब्द किसी राजतंत्र का अभाव बतलाता है और एक विशिष्ट रूप से सार्वजनिक अखाड़े और जन-प्रशासन का भी संकेत करता है। राजनीति-सिद्धांत की एक विचारधारा के रूप में, यह कुछ सांस्थानिक प्राधारों और नैतिक सिद्धांतों की वकालत करता है, जिसमें जन-सहभागिता, नागर गुण, जन-उत्साह, आदर व देशभक्ति शामिल हैं।

नियामक : इन अवधारणाओं को अक्सर मूल्यों के रूप में देखा जाता है। ये उन नैतिक सिद्धांतों अथवा आदर्शों को और संकेत करते हैं, जो होने चाहिए, कर्त्तव्य रूप से बाध्य होने चाहिए, अथवा अवश्यकारी रूप से करवाये जाने चाहिए।

निरंकुशवाद : निरंकुशवाद, अर्थात् तानाशाही 17वीं और 18वीं शताब्दी के यूरोप में एक प्रबल राजनीतिक रूप था। यह इस दावे से जुड़ा था कि संप्रभुता, अनापत्तियोग्य और अविभाज्य वैध प्राधिकार का प्रतिनिधित्व करती हुई, सर्व-प्रधान शासक में निहित होती थी। आज आम इस्तेमाल में हम किसी सरकार को निरंकुश इस अर्थ में पुकारते हैं कि उसके पास बेरोक सत्ता है।

राजनीतिक दायित्व : दायित्व अर्थात् बाध्यीकरण एक रीति-विशेष से कार्य करने हेतु एक अपेक्षा अथवा कर्त्तव्य है। राजनीतिक दायित्व राज्य के प्राधिकार को स्वीकार करने और उसके कानूनों का पालन करने हेतु नागरिक का कर्त्तव्य है।

व्याख्यात्मक : ये अवधारणाएँ उन तथ्यों की ओर इशारा करती हैं, जिनको एक यथार्थ अस्तित्व धारक माना जाता है और उनके दृश्टांतों (illustrations) के रूप में देखा जाता है जो विद्यमान है, अथवा जो वस्तुतः अस्तित्व रखता है।

सामाजिक संविदा : हॉब्स, लॉक और रूसो जैसे दार्शनिक, जो सामाजिक संविदा की धारणा से जुड़े थे, संविदा अर्थात् अनुबंध को व्यक्तिजनों के बीच एक स्वैच्छिक समझौते के रूप में देखते हैं, जिसके परिणामस्वरूप एक संगठित समाज अथवा राजनीतिक प्राधिकार का जन्म होता है। सामाजिक संविदा कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं हैं। यह सामाजिक व राजनीतिक संगठनों के अध्ययन के लिए एक विश्लेषणात्मक युक्ति है।

15.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

बीथम, डैविड, पॅलिटिकॅल लैजिटिमेसी, केट नैश एवं ऐलेन स्कॉट (सं.) कृत द *ब्लैकवैल कम्पैनिअन टु पॅलिटिकल सोशिओलॅजी* में, ब्लैकवैल, 2001।

_____ , द *लैजिटिमेशन ऑफ पॉवर,* मैकमिलन, बेसिंगस्टोक, 1991।

कॉनॉली, *लैजिटिमेसी एण्ड द स्टेट,* बेसिल ब्लैकवैल, ऑक्सफार्ड, 1984।

हेवुड, एन्ड्रू, *पॉलिटिक्स,* मैकमिलन, लंदन, 1997।

पैत्रा, जेम्स, 'क्लास पॅलिटिक्स, स्टेट पावर एण्ड लैजिटिमसी', *इकॉन्मिक एण्ड पॅलिटिकॅल वीकली,* 26 अगस्त, 1989, पष् 1955-58।

पूलाकी, एथेनैसियो, *लैजिटिमेसी/लैजिटिमाइट,* वाल्तर द ग्रुइअर, बर्लिन, 1986।

15.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखें भाग 15.1
2) देखें उपभाग 15.1.4

बोध प्रश्न 2

1) देखें भाग 15.2
2) देखें उपभाग 15.2.4 और 15.2.5
3) देखें उपभाग 15.2.6

बोध प्रश्न 3

1) देखें भाग 15.3

बोध प्रश्न 4

1) देखें भाग 15.4